ISSN 2454 - 5163

26 अगस्त 2021, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 40, अंक 02, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खजुराहो (पार्श्वनाथ मंदिर)

वीतराग-विज्ञान (457)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7000
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10000**

जैनशासन का रहस्य

देव-गुरु-शास्त्र का उपदेश तो ऐसा है कि तेरे आत्मा के आश्रय से ही तेरा धर्म है, पराश्रय से शुभराग की वृत्ति उठे वह तेरा धर्म नहीं है; तथापि जो पुण्य को धर्म मानता है, उसने देव-गुरु-शास्त्र को, पुण्य को या धर्म को - किसी को नहीं माना; निश्चय-व्यवहार को या द्रव्य-गुण-पर्याय को भी नहीं जाना है। संत कैसे होते हैं, धर्मात्मा कैसे होते हैं, सच्चे वैराग्य - की त्याग की या व्रतादि की भूमिका कैसी होती है, उसकी उसे खबर नहीं है

अहो! जिसकी प्रतीति में मूलभूत चैतन्यस्वभाव नहीं आया, उसमें किसी भी तत्त्व का यथार्थ निर्णय करने की शक्ति नहीं है। अपने चैतन्य स्वभाव का आश्रय करते ही ज्ञान की स्वपरप्रकाशक शक्ति विकसित हो जाती है और वह स्व-पर को यथार्थ जानती है। मात्र पर की ओर झुका हुआ ज्ञान स्व को या पर को - किसी को यथार्थ नहीं जानता - और स्वभाव की ओर झुका हुआ ज्ञान स्व को तथा पर को - दोनों को यथार्थ जानता है। अहो ! इसमें जैनशासन का गंभीर रहस्य है। इस रहस्य को समझे बिना जैनशासन के मूल का पता नहीं चल सकता।

- आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 504

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : ४० (वीर नि. संवत् २५४७) ४५७/अंक : २

को निकसै निज भौनसौं.....

हम बैठे अपनी मौनसौं,
दिन दश के महिमान जगत जन, बोलि बिगारैं कौनसौं।।टेक।।

गये विलाय भरम के बादर, परमारथ-पथ पौनसौं।
अब अंतरगति भई हमारी, परचैं राधा-रौनसौं।।
हम बैठे अपनी मौनसौं।।१।।

प्रगटी सुधा-पान की महिमा, मन नहिं लागै वौनसौं।
छिन न सुहाय और रस फीके, रचि साहिब के लौनसौं।।
हम बैठे अपनी मौनसौं।।२।।

रहे अघाय पाय सुखसंपति, को निकसै निज भौनसौं।
सहजभाव सद्गुरु की संगति, सुरझै आवागौनसौं।।
हम बैठे अपनी मौनसौं।।३।।

– कविवर पण्डित बनारसीदास

जीव का अपना स्वधर्म

देखो! जीव का स्वधर्म! जैसे ज्ञान, जीव का स्वधर्म है; वैसे चारित्र भी जीव का स्वधर्म है; वह जीव से भिन्न नहीं है। जिसप्रकार ज्ञान-दर्शन, आत्मा से भिन्न नहीं हैं; उसीप्रकार चारित्र भी आत्मा से भिन्न नहीं है। देह में चारित्र नहीं है, राग में भी चारित्र नहीं है, राग तो आत्मा के स्वभाव से भिन्न परिणाम है, सिद्धदशा में वह राग निकल जाता है; परन्तु चारित्र तो रहता है। स्वरूप में स्थितिरूप चारित्र, आत्मा का स्वाभाविक गुण है, वह सिद्धदशा में भी आत्मा के साथ अभेद रहता है।

आत्मा का स्वाभाविक परिणाम तो विशुद्ध है, वीतराग है; परन्तु परद्रव्य के प्रति राग-द्वेष-मोह से परिणामों में मलिनता होती है। जैसे, स्फटिकमणि स्वभाव से तो उज्ज्वल-निर्मल है, उसमें अन्य फूल के संसर्ग से लाल, काले इत्यादि रंग की झाँई दिखाई देती है; इसीप्रकार जीवद्रव्य में स्वभाव से राग-द्वेष-मोह नहीं है, परन्तु उसके परिणाम, स्वरूप से च्युत होकर परद्रव्य के साथ सम्बन्ध करके रागादिरूप होते हैं; वास्तव में वे रागादि भाव उसके स्वधर्म नहीं हैं। यद्यपि वह परिणमन तो अपनी पर्याय में है, परन्तु वे परिणाम; स्वभाव के साथ अनन्यभूत नहीं हैं, इसलिये उन्हें स्वभाव से भिन्न जानकर और जीव के विशुद्ध चैतन्यस्वभाव को जानकर, उसमें एकाग्रता से वीतरागी चारित्र प्रगट करना और रागादि दोषों का अभाव करना - ऐसा उपदेश है।

- धन्य मुनिदशा (खण्ड १), पृष्ठ : १८-१९

सम्पादकीय

भरत का अन्तर्द्वन्द्व : नाटक

पहला अंक

पहला दृश्य

मंगलगान

वे तो अन–धन सब के त्यागी ।
भरतजी घर ही में बैरागी ।। टेक ।।

कोड़ अठारह तुरंग[१] हैं जाके, कोड़ चौरासी पागी[२]।
लाख चौरासी गजरथ सोहैं, तो भी भये नहिं रागी ।। भरतजी ।।

तीन करोड़ गोकुल घर सोहैं, एक करोड़ हल साजी ।
नव निधि रत्न चौदह घर जाके, मनबांछा सब भागी ।। भरतजी ।।

चार कोड़ मण नाज[३] उठे नित, लोण[४] लाख दश लागी ।
कोड़ थाल कंचन–मणि सोहैं, नाहीं भया सोई रागी ।। भरतजी ।।

ज्यों जल बीच कमल अन्तःपुर, नाहिं भये वे रागी ।
भविजन होय सोई उर धारो, सोई पुरुष बड़भागी ।। भरतजी ।।[५]

---

१. घोड़ा, २. पैदल चलने वाले सैनिक, ३. अनाज, ४. नमक
५. एक प्राचीन जैन कवि द्वारा रचित भजन।(शोध–खोज के बाद भी कवि का नाम अनुपलब्ध है।)

मंगलगान के पूर्ण होते ही रंगमंच पर राजदरबार का दृश्य सुसज्जित है। एक सभासद सभी का अभिवादन करता है।

सभासद – (गंभीर स्वर में) यह तीसरे काल का सङ्क्षपन है।

अयोध्या के महाराजा ऋषभदेव ने दीक्षित होने के पूर्व अपने साम्राज्य का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र भरतराज को और महाबलि बाहुबलि को युवराज बनाया। महाराज भरत के शासनकाल में सम्पूर्ण राज्य और इस अयोध्या नगरी में सर्वत्र शांति और खुशहाली व्याप्त है, इसके लिए हम महाराज भरत और युवराज बाहुबलि के आभारी हैं।

(तभी नैपथ्य से गूंज सुनाई देती है।)

सावधान! सावधान!! राजाधिराज भरतराज पधार रहे हैं।

(महाराज भरत का दरबार में प्रवेश, सभी सभासद अपने स्थान पर खड़े हो जाते हैं और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। महामात्य आगे बढ़कर महाराज की अगवानी करते हैं।)

महामात्य – पधारिये! पधारिये!! राजाधिराज पधारिये!!!

(महाराज के बैठने के बाद उनके संकेत पर सभी सभासद बैठ जाते हैं। महामात्य के संकेत पर दो व्यक्ति खड़े होकर महामंत्र णमोकार का पाठ एवं देव-शास्त्र-गुरु वन्दना बोलते हैं।)

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

देव-शास्त्र-गुरु वंदना

(दोहा)

भविकजनों का मुक्तिमग, है जिनके आधीन ।
परमशरण हैं सभी को, देव-शास्त्र-गुरु तीन ।। १ ।।

(रेखता)

हमारे देव-शास्त्र-गुरु तीन मुक्ति मग के हैं मूलाधार ।
मूलतः तत्त्वज्ञान के लिये अरे वे एकमात्र आधार ।।
उन्हीं से मिले देशना लब्धि उन्हीं की संगति बारंबार ।
प्राप्त हो हे सर्वज्ञ जिनेश ! उन्हीं को नमस्कार शतबार ।। २ ।।

आप सर्वज्ञ वीतरागी और हित के उपदेशक देव! ।
सुखी हों कैसे जग के जीव आपने बतलाया स्वयमेव ।।
अरे सुखमय मुक्ती का मार्ग आपने ही बतलाया है ।
और तत्त्वों का सम्यक् रूप आपने ही समझाया है ।। ३ ।।

आपकी वाणी के अनुसार बने हैं सभी शास्त्र जिनदेव ! ।
राग में रंच नहीं है धर्म आपने बतलाया हे देव ! ।।
राग का पोषण जो न करे वही होती जिनवर वाणी ।
अरे है वीतरागता धर्म यही कहती है जिनवाणी ।। ४ ।।

और जिनवाणी के अनुसार है जीवन जिनका वे ही सन्त ।
और हैं जो पूरण निर्ग्रन्थ आ गया जिनके भव का अन्त ।।
अरे वे रत्नत्रय के धनी सदा जो रहते आतम लीन ।
हमारे एकमात्र आराध्य सदा ये देव-शास्त्र-गुरु तीन ।। ५ ।।

(दोहा)

परम शरण व्यवहार से देव-शास्त्र-गुरु तीन ।
निश्चय से निज आतमा में ही होना लीन ।। ६ ।।

(महाराज भरतराज महामात्य को दरबार की कार्यवाही आरंभ करने का संकेत करते हैं। (कार्यवाही आरंभ करने की ध्वनि) संकेत पाकर महामात्य जैसे ही दरबार की कार्यवाही आरंभ करने के लिए खड़े होते हैं; उसी क्षण नेपथ्य से 'महाराज की जय हो' की गूंज सुनाई देती है और सामने से आयुधशाला का एक अधिकारी महाराज भरत की जय जयकार करता हुआ सभा में प्रवेश करता है।)

सैन्य अधिकारी – (अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में) बधाई हो महाराज! बधाई हो!! महाराज एक शुभ समाचार है।

(सभी दरबारी उत्सुकतापूर्वक सैन्य अधिकारी की ओर देखते हैं।)

महामात्य – (उत्सुकता से) बोलो भाई! क्या समाचार है?

सैन्य अधिकारी – महाराज! आप चक्रवर्ती हो गये हैं। आयुध शाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ है। (सभी के मुख पर आश्चर्य मिश्रित हर्ष के भाव आ जाते हैं।) (चक्ररत्न प्रगट होने की ध्वनि)।

(महाराज भरत के मुख पर भी प्रसन्नता एक स्मित के रूप में आती है और वे अपने कण्ठ से एक मुक्ताहार उतारकर पुरस्कार के रूप में उसे देते हैं। महाराज की स्मित विलीन हो जाती है। सैन्य अधिकारी विनय से दोनों हाथों की अंजुलि बनाकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मुक्ताहार ले लेता है और राज्यसभा की रीति के अनुरूप अभिवादन कर सभा से प्रस्थान करता है।)

(महामात्य पुनः कार्यवाही आरंभ करने के लिए खड़े होते हैं तभी नेपथ्य से पुनः सम्राट भरत के जय जयकारों की गूँज सुनाई देती है। सभा में अन्तःपुर की दासी प्रवेश करती है।)

दासी – (हर्षातिरेक में) – महाराज की जय हो, महाराज की जय हो; महाराज आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।

सभी दरबारी – (कोरस में) – बधाई हो! महाराज बधाई हो!! (पुनः महाराज के मुख पर प्रसन्नता दिखती है। वे एक स्वर्णहार उसे भी पुरस्कार में देते हैं, जिसे दासी अपने आँचल में प्रसन्नतापूर्वक लेकर अभिवादन कर प्रस्थान करती है।)

(दासी के जाते ही आकाश मार्ग से कुछ देव सभा में प्रवेश करते हैं।)

देवगण – (कोरस में) जय हो, जय हो; भगवान ऋषभदेव की जय हो। महाराज! महाराज!! हे महाराज!!! प्रथम तीर्थंकर मुनिराजश्री ऋषभदेव को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है।

(राज दरबार का आनन्द और उल्लास दुगना हो जाता है, वे भी देवताओं के साथ भगवान ऋषभदेव के जयकारों के नारे लगाने लगते हैं, मंगल वाद्ययंत्र बजने लगते हैं। महाराज भरत के मुख पर भी प्रसन्नता छलकने लगती है।)

सम्राट भरत – (भाव विभोर होकर) ओह! ओह!! ओह!!! मुनिराज ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वे वीतरागी सर्वज्ञ भगवान बन गये, उनकी साधना सफल हुई, उनका मानव जीवन सार्थक हुआ। अहो! कितना अद्भुत समाचार आप लाये हैं, मैं आपको क्या अर्पित करूँ?

(महाराज संकेत करते हैं... उनके संकेत पर रत्नों का थाल लाया जाता है, जिससे देवताओं को यथायोग्य पुरस्कृत करते हैं। फिर वे स्वङ्गं सिंहासन से उतरकर सात कदम चलते हैं और भगवान ऋषभदेव को

साष्टांग नमस्कार करते हैं और सभी सभासद उनका अनुकरण करते हैं। महामात्य को सभा की कार्यवाही स्थगित करने का संकेत कर, सभी की ओर उन्मुख होते हैं।)

सम्राट भरत – मुनिराज ऋषभदेव को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है। अब मैं एक क्षण भी उनके दर्शन से वंचित नहीं रह सकता।

चलो सभी भगवान के दर्शन करने के लिए चलें।

नगर श्रेष्ठी – किन्तु महाराज! चक्ररत्न और पुत्ररत्न .....?

सम्राट भरत – नहीं श्रेष्ठीवर! पहले जिनदर्शन फिर कुछ और

(दोहा)

चक्र पुत्र की प्राप्ति तो है लौकिक उपलब्धि ।
और अलौकिक लब्धि है केवल की उपलब्धि ।। १ ।।

भक्ति भाव के रस भरे निज परिकर के साथ ।
जिनदर्शन को जा रहे भरतेश्वर महाराज ।। २ ।।

पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

(सम्राट भरत अपने सम्पूर्ण बाह्य वैभव को समोशरण के बाहर छोड़कर अपने परिकर के साथ भगवान ऋषभदेव के समोशरण में मनुष्यों के कोठे में मुख्य स्थान पर खड़े होते हैं और भगवान ह्नऋषभदेव की स्तुति करने लगते हैं।)

(दोहा)

सबसे पहले भरत ने जोड़े दोनों हाथ।
फिर स्तुति करने लगे भक्तिभाव के साथ।। १।।

(रेखता)

अरे यह भरत आपका भगत आपके चरणों में रख शीश ।
नमन करता है बारम्बार प्राप्त करना चाहे आशीष ।।
आतमा में ही मेरा चित्त निरन्तर रमा रहे जिनदेव ।
और कुछ नहीं चाहिये मुझे आप से हे देवों के देव !।। २ ।।

आपने बतलाया जिनदेव ! कहाँ कब क्या कैसा होगा ।
जानते हैं सब ही सर्वज्ञ न उसमें फेरफार होगा ।।
और सब निश्चित है हे नाथ! आप यह भी बतलाते हैं ।
अतः हम सभी सहज ही रहें – आप ऐसा समझाते हैं।। ३ ।।

किसी का कुछ करने का भार किसी के माथे पर है नहीं ।
जिसे जाना है भव से पार सहज ही जावेगा वह सही ।।
निगोद से निकला है जिसतरह उसी विध होगा भव से पार।
जगत में अरे सभी कुछ सहज, बात यह सहज करो स्वीकार ।। ४ ।।

स्वयं को भूल गये अवधेश जिनेश्वर की भक्ति में लीन।
जिनेश्वर की भक्ति में लीन स्वयं में स्वयं हुये तल्लीन।।
और सब भूल गये थे भरत एक आतम में ही थे लीन।
ऋषभ के चरणों में झुक गये पूर्णतः भक्ति में तल्लीन।। ५।।[१]

(भरत को इसप्रकार अपने में तल्लीन देखकर नागरिक जन आपस में इसप्रकार चर्चा करने लगे -)

एक ने कहा – देखो, सम्राट किसप्रकार भक्ति में तल्लीन हैं?

दूसरे ने कहा – हाँ, उनकी तल्लीनता तो देखने लायक है। कहीं ऐसा न हो कि अन्य भाइयों के समान ये भी दीक्षा ले लें।

तीसरा – हो तो सकता है। यदि ऐसा हो गया तो फिर इस साम्राज्य को कौन संभालेगा? फिर यह चक्ररत्न भी प्रगट हो गया है, इसका क्या होगा?

चौथा – चिन्ता की बात तो है, पर देख तो उनके चेहरे पर कैसा तेज है।

पाँचवाँ – चेहरे का नूर तो देखने लायक है ही, भक्ति की तल्लीनता भी तो देखो।

छठवाँ – लगता है उन्होंने जिनदर्शन के साथ निजदर्शन भी किये हैं, आत्मानुभव भी किया है। उनके चेहरे पर जो अद्भुत शान्ति दिखाई देती है, सहजता दिखाई देती है, वह शान्ति और सहजता आत्मानुभव के बिना संभव नहीं है।

सातवाँ – बात तो तुम ठीक ही कहते हो; पर जब चक्ररत्न प्रगट हुआ है तो उनकी दीक्षा लेने की काललब्धि अभी दूर ही समझो; क्योंकि

१. पहला अध्याय, छन्द - २४, ३२, ३३, ४७

कुछ निधत्ति-निकाचित कर्म ऐसे होते हैं; जो भोगे बिना नहीं कटते।

आठवाँ – हाँ, बात तो तुम ठीक ही कहते हो; पर उनके वैराग्य रस से सराबोर चेहरे के भाव से तो ऐसा लगता है कि जैसे वे दीक्षा के लिये तैयार ही हों।

नौवाँ – ज्ञानी जीवों की स्थिति ऐसी ही होती है कि वे कभी अन्दर में जाते हैं और कभी बाहर आ जाते हैं।

दशवाँ – भाई! बातें बन्द करो। सुनो; महाराज कुछ कह रहे हैं।

(लोगों का धैर्य समाप्त हो रहा था कि सजग होते हुये भरत ने आदेश दिया कि -)

महाराज भरत – ''चलो, राजमहल की ओर चलो; वहाँ पुत्र जन्म का उत्सव भी तो करना है।''

(भरत का संकेत पाकर सभी आश्वस्त हुये।

भरतजी ऋषभदेव के उपदेशों का विचार करते हुये, चिन्तन करते हुये राजमहल की ओर चले। भरत के साथ ही सभी लोग भी चलने लगे।)

(दोहा)

इसप्रकार भरतेश ने, जिनवर दर्शन आज ।
पूरण भक्तिभाव से, की पूजन जिनराज ।। १ ।।
दिव्यध्वनि के श्रवण का, लाभ लिया भरपूर ।
सबको ही आया प्रभो ! अति आनन्द अपूर्व ।। २ ।।

पटाक्षेप

(शेष अगले अंक में....)

छहढाला प्रवचन

पाँच समिति

अन्तर चतुर्दश भेद, बाहिर संग दसधा तैं टलैं।
परमाद तजि, चौकर मही लखि समिति ईर्या तैं चलैं।।
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरें।
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं।।२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की छठवीं ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

मुनिराज का जीवन तो वीतरागी साधना का जीवन है। वे मौन रहकर अपनी आत्मसाधना करते रहते हैं और जब बोलते हैं तो ऐसा बोलते हैं; जिससे वीतराग भाव का पोषण होता है। तीर्थंकर तो दीक्षा लेकर मुनि होने के बाद केवलज्ञान होने तक मौन ही रहते हैं। केवलज्ञान होने के बाद ही उनकी दिव्यध्वनि खिरती है – यह बात वचनगुप्ति के प्रकरण में विस्तार से आएगी। यहाँ तो भाषा समिति की बात चल रही है अर्थात् मुनिराज जब बोलते हैं तो कैसी सावधानी से बोलते हैं, उनकी भाषा कैसी होती है? – उसका वर्णन है।

धर्मी श्रावक ने भी आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द रस चखा है, उसकी वाणी भी धर्म की पोषक होती है, मधुर होती है और मोक्षमार्ग बतलानेवाली होती है। शास्त्रों में कहा है कि मधुर भाषा के रूप में परिणमित होनेवाली भाषा वर्गणा इस लोक में सर्वत्र उपलब्ध है, तो हे जीव! तू मधुर भाषा बोल न! इसमें पैसा खर्च नहीं करना पडता, मेहनत

नहीं करनी पडती तो फिर अशुभ वचन क्यों बोलता है? हितरूप मधुर वचन बोल न!

अहाहा! मुनियों के 'जग सुहित कर' मधुर वचन बड़े भाग्य से सुनने मिलते हैं। उनके श्रीमुख से चैतन्य स्वभाव को प्रकट करनेवाली वीतरागवाणी सुनकर समझने से जीवों का कल्याण होता है, उन्हें सम्यग्दर्शनादि उत्पन्न होते हैं। ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि में मुनिराज का उपदेश सुनकर तत्क्षण सम्यग्दर्शन हो गया था। भगवान महावीर के जीव को सिंह के भव में और भगवान पारसनाथ के जीव को हाथी के भव में मुनिराज का मधुर उपदेश सुनकर उसी समय सम्यग्दर्शन हो गया था।

आत्मा को सुखदायक उपदेश देते हुए मुनिराज कहते हैं ''अहो जीवो! तुम्हारा आत्मा इस देह से भिन्न हैं। ये राग-द्वेष, क्रोध-मानादि दुःखदायक भाव भी तुम्हारा स्वरूप नहीं है। तुम तो ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान आत्मा हो। अगाध वैभव से भरपूर अपने आत्मा का लक्ष्य करके उसमें लीन हो जाओ तो तुम्हारा परमात्मपना तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव में आयेगा और दूसरों से सुख माँगने की दीनता छूट जायेगी।

आत्मा स्वयं परमात्मसुख का भण्डार है, वह विषयों से सुख की भीख माँगे - यह उसे शोभा नहीं देता। प्रभु! तू दीन और भिखारी नहीं, भगवान है; भगवान को भीख माँगना शोभा नहीं देता। धन के ढेर और पंचेन्द्रिय विषयों में सुख नहीं है, तू स्वयं सुख का भण्डार है। धन का अभाव दुःख का कारण नहीं है; परन्तु अपने को धन के अभाव से दुःखी मानने रूप दीनता अर्थात् भिखारीपना दुःख का कारण है। भगवान! तू दीन नहीं है, तू तो अनन्त गुणों के भण्डार रूप परमेश्वर है, अन्दर में नजर कर, तू निहाल हो जायेगा।

वाह! देखो तो जरा सन्तों की वाणी की रणकार! यह वाणी आत्मा

को जगाकर खड़ा कर देती है, जीव को हित के मार्ग पर लगाने वाली है। इसे सुनते ही आत्मा आनन्दित होकर उल्लसित हो जाता है।

''अहो! मेरा स्वरूप इतना अद्भुत है''- इसप्रकार आश्चर्यचकित होकर अन्तर्मुख हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसी अपूर्व हितकारी वाणी मुनिवरों के श्रीमुख से झरती है।

वह समय कैसा होगा? जब कुन्दकुन्दाचार्य जैसे वीतरागी सन्त इस भूमि पर विचरण करते होंगे और अपनी मधुर वाणी से एकत्व-विभक्त ज्ञायक स्वरूप दिखाते होंगे! अहाहा! वे क्षण और वे भाव कैसे होंगे और उनकी वाणी को झेलकर एकत्व-विभक्त आत्मा का अनुभव करनेवाले श्रोताजन कैसे होंगे?

कुन्दकुन्द प्रभु के मुखचन्द्र से वीतरागी अमृत झरता होगा और महा भाग्यवान श्रोताजन वह अमृत पीकर स्वानुभव करते होंगे। धन्य है वह अवसर! मुनिराज उपदेश देते होंगे, किन्तु दूसरे ही क्षण भाषा का विकल्प छूट जाने से निर्विकल्प उपयोग द्वारा आत्मा के आनन्द रस का पान करने में मग्न हो जाते होंगे - ऐसा मुनि जीवन धन्य है! यह मोक्षमार्ग धन्य है!!

तत्त्व से विरुद्ध उपदेश करनेवाले अज्ञानी जनों की वाणी कदाचित् मधुर हो, उनके वचनों में मिठास हो तो भी उनके वचन जीवों का अहित करनेवाले होने से कड़वे ही हैं। उन राग पोषक वचनों का फल कड़वा ही है; क्योंकि वे मिथ्यामार्ग बताकर जीवों का अहित करनेवाले हैं। मिथ्यात्व ही जीव का सबसे बड़ा अहित करनेवाला है। ज्ञानी के वचन आत्मा का वीतरागी स्वरूप बताकर उसे अहित से छुड़ाकर हितरूप मोक्षमार्ग में लगाते हैं। जैन मुनि के मधुर वचन जीव को पहले मिथ्यात्व से छुड़ाकर फिर राग-द्वेष से भी छुड़ाते हैं। इसप्रकार वीतराग-विज्ञानता के उपदेश द्वारा वे जीवों का हित करते हैं।

एषणा समिति का वर्णन

छयालीस दोष बिना, सुकुल श्रावकतनें घर अशन को।
लें तप बढावन हेतु, नहिं तन पोषते तजि रसन को।।

यहाँ रत्नत्रयरूप शुद्धि के धारक मोक्षमार्गी मुनिराज की क्रियाओं का वर्णन चल रहा है। पाँच समितियों में से ईर्या और भाषा समिति का वर्णन करने के पश्चात् अब तीसरे छन्द में शेष तीन समितियों का स्वरूप बताया जा रहा है।

एषणा समिति - ज्ञान और ध्यान द्वारा आत्मसाधना में लीन रहनेवाले मुनिराज को चारित्र की स्थिरता के उद्देश्य से आहार लेने की वृत्ति उठने पर वे दिन में एकबार, एक ही घर में निर्दोष आहार लेते हैं, वे बार-बार आहार नहीं लेते। जैनमार्ग के आचार को जानने वाले उत्तम कुलवान श्रावक के यहाँ मुनिराज आहार लेते हैं। जैन श्रावक के हृदय में मुनिराज को आहार देते समय जैसी नवधा भक्ति होती है, वैसी दूसरों को नहीं होती। नवधा भक्ति के बिना मुनिराज आहार नहीं लेते।

भगवान ऋषभदेव जब मुनिदशा में थे; तब (दीक्षा लेने के छह माह बाद) आहार लेने के लिए नगर में आते थे; परन्तु उस समय कोई नवधा भक्ति आदि रूप आहारदान की विधि नहीं जानता था; अत: छह माह तक उन्हें आहार लेने का प्रसंग ही नहीं बना। हस्तिनापुर के राजा श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ, जिसमें उन्हें पूर्वभव में मुनिराज को विधिपूर्वक आहार देने की विधि का स्मरण हो गया। उन्होंने उसी प्रकार विधिपूर्वक पड़गाहन करके मुनिराज ऋषभदेव को इक्षुरस का आहार दिया। इस भरतक्षेत्र में मुनिराज को आहार देने का प्रसंग असंख्य वर्षों बाद प्रथम बार बना। इसलिए भरत चक्रवर्ती ने राजा श्रेयांस का अभिनन्दन करते हुए उन्हें दानतीर्थ का प्रवर्तक कहा। तभी से इस

भरतक्षेत्र में मुनियों को आहार देने की परम्परा प्रारंभ हुई।

इसप्रकार जैन मुनि कुलवान श्रावक के घर विधिपूर्वक आहार लेते हैं। वे बिना विधि के जैसे तैसे चाहे जिसके यहाँ आहार नहीं लेते। वे अपने हाथ में, शोधकर तथा छियालीस दोष रहित आहार लेते हैं। गृद्धता छोडकर किसी न किसी रस का त्याग करते हैं। मात्र संयम की रक्षा के प्रयोजन से आहार लेते हैं। अहाहा! अन्तर में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर भोजन करनेवाले मुनिराज पौद्गलिक आहार में मूर्छित कैसे हो सकते है?

मुनिराज को आहार लेते समय उसमें यदि किसी जीव-जन्तु के हिंसा की शंका पड जाए या बाल जैसी अशुद्ध वस्तु आहार में दिख जाए तो वे आहार करना छोड़ देते हैं, चाहे गत एक-दो दिनों का उपवास ही क्यों न हो? जरा-सा दोषयुक्त आहार लेने से क्या बिगडता है? - ऐसे विचार से शिथिल होकर आहार नहीं लेते और आहार छोड देने पर अपने परिणामों में क्लेश नहीं करते। वे आहार सम्बन्धी विचार छोड़कर ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय में उपयोग जोड़ देते हैं। ऐसा उत्तम आचरण एषणा समिति में होता है। **(क्रमशः)**

दृष्टिकोण को बदलें

षट्द्रव्यरूपी लोक तो अपने परिणमनस्वभाव में पूर्ण व्यवस्थित है; अतः परिवर्तन लोक में नहीं, अपनी दृष्टि में करना है; किन्तु जगतजन जगत को अपने राग-द्वेषात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं और तदनुसार ही उसे परिणमित करना चाहते हैं।

उल्टी गंगा बहाने के इस दुष्प्रयत्न में हमने अनन्तकाल बिताया है और अनन्त दुःख भी उठाये हैं। **-चिन्तन की गहराईयाँ, पृष्ठ : १११**

नियमसार प्रवचन –

कारण समयसार

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा ९७ पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलत: इसप्रकार हैं –

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी।।९७।।

(हरिगीत)

ज्ञानी विचारें देखे-जाने जो सभी को मैं वही।
जो ना ग्रहे परभाव को निज भाव को छोड़े नहीं।।९७।।

ज्ञानी चिंतन करता है कि जो निजभाव को नहीं छोड़ता, किंचित् भी परभाव को ग्रहण नहीं करता, सर्व को जानता-देखता है; वह मैं हूँ।

(गतांक से आगे....)

अब कलश १३० में टीकाकार कहते हैं कि अहो! इस एक चैतन्य चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं भी हमारा चित्त नहीं लगता।

(शार्दूलविक्रीडित)

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिंतामणा-
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम्।।
तच्चित्रं न विशुद्धपूर्णसहजज्ञानात्मने शर्मणे।
देवाना ममृताशनोद्भवरुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने।।१३०।।

(रोला)

अन्य द्रव्य के आग्रह से जो पैदा होता।
उस तन को तज पूर्ण सहज ज्ञानात्मक सुख की।।

प्राप्ति हेतु नित लगा हुआ है निज आतम में।
अमृतभोजी देव लगे क्यों अन्य असन में॥ १३०॥

श्लोकार्थ :– अन्य द्रव्य का आग्रह[१] करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह[२] को अब छोड़कर, विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु, मेरा यह निज अन्तर मुझमें – चैतन्यमात्र-चिंतामणि में निरन्तर लगा है – उसमें आश्चर्य नहीं है, कारण कि अमृतभोजनजनित स्वाद को जानकर देवों को अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है? (जिसप्रकार अमृतभोजन के स्वाद को जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसीप्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर हमारा मन उस सौख्य के निधान चैतन्यमात्र-चिंतामणि के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता।

आत्मा चिदानन्द भगवान है; उसके अतिरिक्त पुण्य, पाप, शरीरादि सब परद्रव्य हैं, उनका आग्रह करने से राग-द्वेष और क्लेश की उत्पत्ति होती है तथा शरीर की प्राप्ति होती है। मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ, रागादि या देहादि मैं नहीं हूँ – ऐसा समझकर परद्रव्य के आग्रह को छोड़कर, मिथ्यात्व को छोड़कर अर्थात् आत्मा के सहज सुख की प्राप्ति के लिए अपना अन्तर चैतन्यमात्र चिन्तामणि अपने आत्मा में ही लगा है।

अनादि से जीव ने चैतन्य को चूककर 'रागादि मैं और शरीरादि की क्रिया का कर्त्ता मैं' – ऐसा परद्रव्य का मिथ्या आग्रह ही सेवन किया, परन्तु टीकाकार कहते हैं कि अहो! अब तो उस मिथ्या आग्रह को छोड़कर अपनी अन्तर परिणति चिन्मात्र चिन्तामणि में ही लगी है; क्योंकि वही परम सहज सुख की प्राप्ति का स्थान है। इस चैतन्य चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्यत्र हमारा मन लगता ही नहीं है; क्योंकि

१. आग्रह = पकड़; ग्रहण; लगे रहना वह।
२. विग्रह = (१) रागद्वेषादि कलह; (२) शरीर।

जैसे अमृत भोजन के स्वाद को जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, वैसे ही चैतन्य के परमसुख का स्वादानुभव होने पर अन्य कहीं भी हमें सुख भासता नहीं है अर्थात् चैतन्य चिन्तामणि के अलावा किसी दूसरी वस्तु में हमारा मन नहीं लगता।

देवों को स्वर्ग में अमृत का आहार मिलता है। अज्ञानी हो तो भी दया-दान-ब्रह्मचर्यादि के शुभभाव से देव हो जाता है और वहाँ उनको बहुत वर्षों बाद जब आहार की इच्छा होती है, तब उनके कण्ठ में से अमृत झरता है। उस अमृत के सामने उनको अतिस्वादिष्ट मिष्ठान्न भी तुच्छ लगता है, उन्हें अन्य भोजन की इच्छा ही नहीं होती।

उसीप्रकार यहाँ ज्ञानी को सहज अमृत के कुण्ड चैतन्य का अनुभव होने पर अन्य किसी पदार्थ में चित्त नहीं लगता। जिस शुभभाव से नवीन पुण्य बँधता है, उस शुभराग के वेदन की रुचि भी ज्ञानी को नहीं होती; उसका चित्त तो सदा चैतन्य के स्वाद में ही लगा है।

देखो! आत्मा का स्वाद आए बिना विषयों को छोड़ना चाहे तो वे छूट नहीं सकते। आत्मा के सहज आनन्द का भान होने पर विषयों में सुखबुद्धि नियम से छूट जाती है, रहती ही नहीं। जहाँ चैतन्य के सहज आनन्द का स्वाद आया, वहाँ विषयों की इच्छा नहीं होती।

अहो! टीकाकार कहते हैं कि हमारा मन तो सुखनिधान चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही लगा है अर्थात् अन्य सब भावों का हमारे प्रत्याख्यान हो गया है।

जैसे देवों को अमृत का भोजन मिलने पर अन्य दूधपाक, हलवा आदि के भोजन सहज ही छूट गये होते हैं; वैसे ही हमें चैतन्य के सहजानन्द के स्वाद के मिलने पर शुभाशुभभावों का प्रत्याख्यान हो गया है, हमारा अन्तर तो निरन्तर चैतन्यस्वरूप में ही लगा है। **(क्रमशः)**

समयसार की ४७ शक्तियों पर प्रवचन

स्वच्छत्व शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की ४७ शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमान-लोकालोकाकार-मेचकोपयोग स्वच्छत्वशक्तिः। अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक अर्थात् अनेक आकाररूप - ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है - ऐसी स्वच्छत्वशक्ति है।

जिसप्रकार दर्पण की स्वच्छता से उसमें मुखमण्डल आदि प्रकाशित होते हैं; उसीप्रकार आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से आत्मा के उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।

ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनन्त शक्तियों के भण्डार भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश अमूर्तिक हैं। उनमें स्पर्श, रस, गंध अथवा वर्ण नहीं हैं; इसलिए वे अमूर्तिक हैं। उन प्रदेशों में प्रकट लोकालोक के आकारों से मेचक अर्थात् अनेक आकाररूप ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है - ऐसी स्वच्छत्व नाम की शक्ति त्रिकाल पड़ी है।

यहाँ लोकालोक का आकार कहा, उसमें जड़ तथा चेतन सभी पदार्थ आ गये। पुद्गल के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण जानने में आते हैं; परन्तु वे आत्मा के अमूर्तिक प्रदेशों में प्रवेश नहीं करते।

आत्मा सर्व पदार्थों को पर की अपेक्षा बिना ही स्व-उपयोग में जान ले - ऐसा ही उसकी स्वच्छत्वशक्ति का स्वभाव है।

लोकालोक है, इसलिए उसका ज्ञान होता है – ऐसा बिल्कुल नहीं है। स्वच्छत्वशक्ति स्वतः स्वयं ही स्वच्छतारूप से परिणमित होती है और उसके द्वारा ही उपयोग में लोकालोक का आकार सहज ज्ञात होता है।

भाई! यह तो सर्वज्ञदेव की वाणी है। भगवान के समवसरण में सौ इन्द्र इस वाणी को सुनने आते हैं। केसरी, सिंह, बाघ, काले नाग इत्यादि भी उस वाणी को सुनने के लिए जंगल में से आते हैं। समवशरण में ऊपर जाने के लिए बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं। एक अन्तर्मुहूर्त में सभी ऊपर पहुँच जाते हैं और वहाँ जाकर भगवान की दिव्यध्वनि सुनते हैं। ओहो! निर्बैर होकर अति नम्रभाव से समवशरण में बैठकर सभी भगवान की वाणी सुनते हैं।

प्रश्न – क्या सिंह और बाघ वाणी समझते होंगे?

उत्तर – हाँ, वे तिर्यंच अपनी-अपनी भाषा में भलीप्रकार समझते हैं और कितने ही वाणी सुनकर वहाँ सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर लेते हैं। शरीर भले ही सिंह अथवा बाघ का हो; परन्तु अन्दर में तो सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा विराजता है। **भाई! तू भी मनुष्य नहीं है, भगवान आत्मा है – ऐसा यथार्थ चिन्तन कर।**

ढाई द्वीप तक मनुष्य हैं, उसके बाहर असंख्य तिर्यंच सम्यग्दृष्टि, पंचम गुणस्थान वाले हैं। स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्र है, उसमें एक हजार योजन लम्बे शरीरवाले मगरमच्छ हैं। उनमें कोई सम्यग्दृष्टि और पाँचवें गुणस्थानवाले श्रावक तिर्यंच हैं। अंतरंग में शान्ति की वृद्धि होकर उनको श्रावकदशा प्रकटी है। **आगम में कहा है कि ढाई द्वीप के बाहर असंख्य सम्यग्दृष्टि आत्मज्ञानी तिर्यंच हैं। उनमें अनेकों को तो सम्यग्दर्शन के साथ स्व-आश्रय से उत्पन्न होनेवाली शान्ति की वृद्धि होने से पंचम गुणस्थान वर्तता है।**

उसमें कितने ही जातिस्मरणज्ञानवाले, अवधिज्ञानवाले पंचम गुणस्थानवर्ती हैं। कई स्थलचर प्राणी - बाघ, रीक्ष, हाथी, घोड़ा इत्यादि, कई जलचर तथा कई नभचर - कौआ, तोता, चकवा, चकवी इत्यादि असंख्य तिर्यंच सम्यग्दर्शन सहित पाँचवें गुणस्थानवाले वहाँ हैं। भले ही वे थोड़े हैं, परन्तु फिर भी असंख्य हैं। तिर्यंचों की संख्या बहुत अधिक है, उसमें असंख्य-असंख्य मिथ्यादृष्टिओं के सामने एक-एक सम्यग्दृष्टि है।

इस जीव ने मनुष्य भव सबसे कम प्राप्त किये हैं। जबकि अनन्त बार इस जीव को मनुष्यपना प्राप्त हुआ है, तो भी चारों गति में सब से कम भव मनुष्य के पाये हैं - मनुष्य के भवों से असंख्यातगुणे स्वर्ग के भव प्राप्त किये हैं। स्वर्ग में जीव कहाँ से आता है? नरक में से तो जीव स्वर्ग में जाता नहीं और मनुष्य बहुत थोड़ी संख्या में हैं। इसलिए तिर्यंच में से मरकर बहुत जीव स्वर्ग में जाते हैं तथा बहुत जीव नरक भी जाते हैं। मन सहित तथा मन रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की संख्या बहुत अधिक है। उसमें किसी को शुक्ल लेश्या, पद्म लेश्या अथवा पीत लेश्या के भाव होते हैं तो स्वर्ग में जाते हैं।

इन बैल इत्यादि पशुओं को देखकर ऐसा लगता है कि अरे रे! ये बिचारे जीव कहाँ जायेंगे? धर्म के परिणाम तो उनके हैं नहीं और पुण्य का भी क्या ठिकाना? अरे रे! मरकर नारकी अथवा पशु होंगे; क्योंकि स्वर्ग के भवों से एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के तिर्यंच के भव जीव ने असंख्यातगुणे प्राप्त किये हैं। अरे रे! आत्मज्ञान बिना ही देहबुद्धि द्वारा ऐसे अनन्त भव प्राप्त करके मरा है, महादुःखी हुआ है।

आहाहा...! उसके दुःख का क्या कथन करें? समुद्र के समान अकथ्य दुःख इसने सहन किये हैं। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : धर्मात्मा ज्ञानरूप ही रहता है - इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : भेदज्ञानी धर्मात्मा सर्व प्रसंगों में जानता है कि ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ। चाहे जैसी प्रतिकूलता में घिर जाने पर भी अपने ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा उसे कभी छूटती नहीं। इस भाँति सर्व प्रसंगों में अपने चैतन्यस्वभावरूप ही अनुभव करता रहने से धर्मात्मा ज्ञानरूप ही रहता है।

प्रश्न : धर्मात्मा ज्ञानरूप ही रहता है और रागरूप बिलकुल नहीं होता - यह किसका बल है ?

उत्तर : यह भेद-विज्ञान का बल है। भेद विज्ञान की ऐसी शक्ति है कि वह ज्ञान को ज्ञानरूप ही रखता है, उसमें किंचित् भी विपरीतता आने नहीं देता और न रागादिभावों को ही उसमें प्रविष्ट होने देता है। इसप्रकार भेदविज्ञान का बल ज्ञान और राग को परस्पर एकमेक नहीं होने देता, अपितु भिन्न ही रखता है; इसलिए भेद-विज्ञानी धर्मात्मा ज्ञानरूप ही रहता है, रागरूप नहीं होता।

प्रश्न : विकार भावों को आत्मा से अन्य क्यों कहा हैं, जबकि वे आत्मा में ही होते हैं ?

उत्तर : आत्मा की अवस्था में जो राग-द्वेषादि विकारीभाव होते हैं, वे रूपी नहीं हैं और वे भाव अजीव में भी नहीं होते। यद्यपि वे अरूपी हैं और आत्मा की ही अवस्था में होते हैं, तथापि द्रव्यदृष्टि में उन्हें आत्मा से अन्य वस्तु कहा गया है; क्योंकि आत्मा के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा वे विकारीभाव भिन्न हैं; अत: अन्यवस्तु हैं। वे विकारीभाव

शुद्धात्मा के आश्रय से नहीं होते, जड़ के लक्ष से होते हैं। धर्मात्मा की दृष्टि आत्मा के शुद्धस्वभाव के ऊपर है और उस स्वभाव में से विकारीभाव आते नहीं, इसलिए धर्मी उनका कर्त्ता नहीं होता। अत: उन्हें जड़ पुद्गल परिणाम कहकर आत्मा से अन्यवस्तु कहा गया है।

वे परिणाम न तो पुद्गल में होते हैं और न उन्हें कर्म ही कराते हैं, वे आत्मा की ही पर्याय में होते हैं, तथापि पर्यायबुद्धि छुड़ाने और शुद्धद्रव्य को दृष्टि कराने के लिए उन्हें आत्मा से अन्य कहा है; परन्तु उन्हें 'अन्य हैं' – ऐसा वही कह सकता है, जिसे शुद्धात्मा की दृष्टि हुई हो। अज्ञानी को तो विकार और आत्मस्वभाव की भिन्नता का भान ही नहीं है, इसलिए वह तो दोनों को एकमेक मानकर विकार का कर्त्ता होता है, विकार उसके लिए आत्मा से अन्य नहीं रहा।

प्रश्न : आत्मा और पर का संबंध नहीं है – यह समझने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर : पर के साथ संबंध नहीं अर्थात् परलक्ष्य से जो विकार होता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है – इसप्रकार पर के साथ का संबंध तोड़कर तथा अपनी पर्याय का भी लक्ष्य छोड़कर अभेदस्वभाव की दृष्टि करना – यही प्रयोजन है। **(क्रमश:)**

वीतराग-विज्ञान एवं जैन पथप्रदर्शक उपलब्ध

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित वीतराग-विज्ञान (मासिक) एवं जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) पत्रिकाओं की सॉफ्टकॉपी पी.डी.एफ. फॉर्मेट में www.ptst.in वेबसाइट पर प्राप्त की जा सकती है।

इसके लिये वेबसाइट पर Downloads में वीतराग-विज्ञान या जैनपथप्रदर्शक खोलें, इसके पश्चात् Search Box में सन् डालने पर उस वर्ष के सभी अंक मिल जाएँगे। आप किसी भी फाइल को डाउनलोड कर सकते हैं।

(नोट – सन् 2002 के पश्चात् से अब तक सभी अंक उपलब्ध हैं।)

समाचार दर्शन -

अनेक नवीन उपलब्धियों सहित WWW.PTST.LIVE के माध्यम से

44वाँ आध्यात्मिक ई-शिक्षण शिविर सम्पन्न

महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ

* हाइब्रिड शिविर * अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित
* अनेक भाषाओं में कक्षायें * विशेषज्ञ विद्वानों का सान्निध्य
* प्रतिदिन ३१ कक्षाओं का आयोजन * ४५ से अधिक विद्वत्सान्निध्य
* प्रतिदिन ११ घंटे ज्ञान गंगा प्रवाहित * ३५०० से अधिक रजिस्ट्रेशन
* २००-२५० लोग प्रत्येक कक्षा में ज़ूम पर लाईव
* २०-२२ हजार प्रतिदिन यूट्यूब पर व्यूअर्स
* डिजिटल में फिजिकल का अहसास

जयपुर (राज.) : यहाँ पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर के तत्त्वावधान में **कहान समयसार सम्प्राप्ति शताब्दी वर्ष** के अवसर पर आयोजित ४४ वाँ आध्यात्मिक e - शिक्षण शिविर रविवार, दिनांक ८ अगस्त से रविवार, दिनांक १५ अगस्त तक अनेक उपलब्धियों सहित सानंद सम्पन्न हुआ।

उद्घाटन समारोह – उद्घाटन दि. ८ अगस्त,२०२१ को श्री निहालचन्दजी एवं श्री घेवरचन्दजी जैन, जयपुर द्वारा ध्वजारोहणपूर्वक किया गया। इस अवसर पर आयोजित सभा की अध्यक्षता श्री प्रेमचंदजी बजाज, कोटा ने की। मुख्य अतिथि के रूप में ट्रस्ट के अध्यक्ष श्रीमान सुशीलकुमारजी गोदीका उपस्थित थे। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल का भी मंगल सान्निध्य प्राप्त हुआ। संचालन पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया।

श्री समयसार कलश महामण्डल विधान – इस अवसर पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा रचित श्री समयसार कलश मण्डल विधान का आयोजन डॉ. शांतिकुमारजी पाटील एवं डॉ. संजीवकुमारजी गोधा के निर्देशन में पण्डित जिनेंद्रजी शास्त्री, पण्डित रिमांशुजी शास्त्री, पण्डित दिव्यांशजी शास्त्री के सहयोग

से संपन्न हुआ। उद्घाटन श्रीमती श्रीकांताबाई पूनमचंदजी छाबड़ा ने किया।

प्रवचन शृंखला – शिविर में प्रतिदिन प्रातः डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के अरिहंत चैनल के माध्यम से ४७ शक्ति विषय पर प्रवचनों का प्रसारण, तत्पश्चात् गुरुदेव श्रीकानजीस्वामी के समयसार विषय पर सी.डी. प्रवचन, तदुपरांत डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के समयसार निर्जराधिकार पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला।

दोपहर में बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा एवं पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, जयपुर के वीडियो प्रवचन तथा रात्रि में मुख्य प्रवचन के रूप में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के **समाधि का सार** विषय पर सारगर्भित एवं हृदयग्राही प्रवचन हुए।

समयसार व्याख्यानमाला – इसके अंतर्गत पूर्वरंगसहित जीवाजीवाधिकार पर पण्डित राजेंद्रजी जबलपुर, कर्ता-कर्माधिकार पर पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर, पुण्य-पाप व आस्रवाधिकार पर पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर, संवर व निर्जराधिकार पर पण्डित शैलेषभाई अहमदाबाद, बंध व मोक्षाधिकार पर पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार पर पण्डित संजयजी शास्त्री कोटा एवं परिशिष्ट पर पण्डित विपिनजी शास्त्री, नागपुर के सारगर्भित व्याख्यान हुए। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन दोपहर में श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्र विद्वानों के छात्र-प्रवचनों का लाभ मिला।

शिविर में संचालित कक्षाएँ – प्रतिदिन बाल ब्र. सुमतप्रकाशजी द्वारा **ज्ञानी श्रावक की ११ प्रतिमाएँ,** पण्डित अभयजी शास्त्री, देवलाली द्वारा **द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय,** डॉ. शांतिकुमारजी पाटील द्वारा **समयसार** (गाथा ११६-१२३), डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा **तत्त्वार्थसूत्र** (१ अध्याय), डॉ. वीरसागरजी दिल्ली द्वारा **प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री समंतभद्र,** पण्डित राजकुमारजी शास्त्री ने **निमित्त-उपादान व षट्कारक,** पण्डित पीयूषजी शास्त्री द्वारा **मोक्षमार्ग प्रकाशक** (४ अधिकार), पण्डित धर्मेंद्रजी शास्त्री द्वारा **शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति,** डॉ. प्रवीणजी शास्त्री द्वारा **दशकरण,** पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री द्वारा **छहढाला** (२ ढाल), पण्डित अच्युतकांतजी शास्त्री द्वारा **चतुर्थ गुणस्थान** एवं विदुषी स्वानुभूतिजी द्वारा **वीतरागता व सर्वज्ञता** पर कक्षाएँ ली गई।

विभिन्न भाषाओं की कक्षाएँ – मराठी भाषा में डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, पण्डित नंदकिशोरजी मांगूलकर एवं पण्डित जितेन्द्रजी राठी द्वारा सच्चे देव का स्वरूप विषय पर, **कन्नड भाषा में** डॉ. राजेंद्रजी द्वारा द्रव्य-गुण-पर्याय पर तथा **तमिल भाषा में** डॉ. उमापतिजी शास्त्री द्वारा नियमसार, पण्डित जयराजनजी शास्त्री द्वारा समयसार एवं पण्डित जम्बूकुमारजी शास्त्री द्वारा अष्टपाहुड़ विषय पर कक्षा ली गई।

बाल कक्षा – पण्डित अभिषेकजी द्वारा शिशुवर्ग, पण्डित समकितजी द्वारा बालवर्ग एवं विदुषी दीप्तिजी द्वारा किशोरवर्ग की कक्षा ली गई।

अन्य देशों में संचालित कक्षाएँ – डॉ. शुद्धात्मप्रभाजी टडैया द्वारा Art of Happy Living विषय पर Sydeny में, विदुषी प्रतीतिजी मोदी द्वारा देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप पर USA में (अंग्रेजी बाल कक्षा) एवं पण्डित शाश्वतजी शास्त्री द्वारा Basic Jainism पर USA में (अंग्रेजी शिशुवर्ग कक्षा) संचालित हुई।

नये रूप में आयोजित इस सम्पूर्ण शिविर के संचालन में पण्डित सर्वज्ञजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित रूपेन्द्रजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित आकाशजी शास्त्री अमायन एवं पण्डित आकाशजी शास्त्री हलाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। ●

ग्रंथाधिराज समयसार अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुंदकुंद द्वारा विरचित **ग्रंथाधिराज समयसार** के अधिकतम प्रचार-प्रसार हेतु **डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल** की प्रेरणा से डॉ.पारसमलजी अग्रवाल ने इस ग्रंथ का व्याख्या सहित अंग्रेजी अनुवाद का कार्य किया है। **Soul Science** के नाम से प्रकाशित 600 पृष्ठों की यह पुस्तक कुंदकुंद ज्ञानपीठ, इंदौर द्वारा तीन भागों में उपलब्ध है।

इसमें आचार्य अमृतचंद्र एवं आचार्य जयसेन की संस्कृत टीका के महत्वपूर्ण अंशों को भी उद्धरित किया गया हैं। नवयुवकों की दृष्टि से इस पुस्तक में विषय को तार्किकता के साथ प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है।

पुस्तक प्राप्ति हेतु सम्पर्क सूत्र – कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

E-Mail : anupamjain3@rediffmail.com / Mo. - 9589883822

'सहजता' विषय पर संगोष्ठी सानन्द सम्पन्न

कहान समयसार संप्राप्ति शताब्दी वर्ष के अवसर पर पण्डित अरुकुमारजी मोदी परिवार, मकरोनिया सागर के सहयोग एवं डॉ. राकेशकुमारजी शास्त्री, नागपुर के निर्देशन में दिनांक 23 से 27 जुलाई, 2021 तक सहजता विषय पर भव्य संगोष्ठी सम्पन्न हुई।

प्रतिदिन दोपहर कालीन सत्र में आध्यात्मिक पाठ व पूज्य गुरुदेवश्री के सी. डी. प्रवचन उपरांत पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर, ब्र. हेमचंदजी हेम भोपाल, पण्डित प्रदीपजी झांझरी सूरत, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, डॉ. प्रवीणजी शास्त्री बांसवाडा के सहजता विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से मार्मिक व्याख्यानों का लाभ मिला।

प्रथम सत्र में अध्यक्ष डॉ. शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, विशेषज्ञ पं. सुनीलजी शास्त्री राजकोट, मुख्य अतिथि पं. परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल एवं विशिष्ट अतिथि पं. राकेशजी शास्त्री व पं. संजयजी सेठी का समागम प्राप्त हुआ। सत्र का संचालन पं. आलोकजी शास्त्री, कारंजा एवं मंगलाचरण श्रीमती आयुषीजी एवं श्रीमती श्रुतिजी मोदी ने किया। **द्वितीय सत्र में** अध्यक्ष पं. विपिनजी शास्त्री नागपुर, विशेषज्ञ डॉ. संजयजी शास्त्री दौसा, मुख्य अतिथि पं. ऋषभजी शास्त्री एवं विशिष्ट अतिथि पं. शिखरचंदजी शास्त्री व श्री अक्षयकुमारजी का समागम प्राप्त हुआ। सत्र का संचालन पं. समकितजी शास्त्री तथा मंगलाचरण स्वस्ति जैन ने किया। **तृतीय सत्र में** अध्यक्ष पं. रमेशजी शास्त्री जयपुर, विशेषज्ञ पं. धर्मेंद्रजी शास्त्री कोटा, मुख्य अतिथि श्री अखिलेशजी जैन एवं विशिष्ट अतिथि पं. शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल का समागम प्राप्त हुआ। संचालन विदुषी प्रज्ञाजी देवलाली एवं मंगलाचरण रिद्धि जैन ने किया। **चतुर्थ सत्र में** अध्यक्ष ब्र. अमित भैयाजी विदिशा, विशेषज्ञ डॉ. दीपकजी शास्त्री, मुख्य अतिथि पं. संजयजी शास्त्री जेवर एवं विशिष्ट अतिथि पं. अशोकजी लुहाड़िया व पं. सुधीरजी का समागम प्राप्त हुआ। सत्र का संचालन पं. ऋषभजी शास्त्री एवं मंगलाचरण एनी जैन ने किया।

पंचम सत्र की अध्यक्षता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर ने की। विशेषज्ञ पं. अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, मुख्य अतिथि ब्र. हेमचंदजी हेम देवलाली एवं विशिष्ट अतिथि पं. प्रदीपजी झांझरी सूरत का समागम प्राप्त हुआ सत्र का संचालन डॉ. राकेशजी शास्त्री, नागपुर एवं मंगलाचरण पं. अंकितजी शास्त्री ने किया।

महाविद्यालय का 'स्थापना दिवस' सम्पन्न

महाविद्यालयों में शिरोधार्य **श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय** ने अपने गौरवमयी इतिहास तथा उद्देश्यों की अडिगता के साथ अपने **स्थापना दिवस** 24 जुलाई, 2021 को 45 वें वर्ष में प्रवेश किया। इस उपलक्ष्य में महाविद्यालय के यशस्वी प्राचार्य डॉ. शांतिकुमारजी पाटील के निर्देशन में **स्थापना दिवस समारोह** का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल का मंगल सान्निध्य प्राप्त हुआ। कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री सुशीलकुमारजी गोदिका थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री वसंतभाईजी दोषी, श्री महिपालजी ज्ञायक, श्री अनंतजी पाटनी, श्री नरेशजी, श्री विपुलजी मोटानी, श्री अशोकजी पाटनी, आ. कमलाजी भारिल्ल एवं श्रीमती गुणमालाजी भारिल्ल का विशेष समागम प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में डॉ. शांतिकुमारजी पाटील ने सभी गणमान्य अतिथियों का स्वागत किया। साथ ही महाविद्यालय की स्थापना के पीछे निहित उद्देश्यों को बताते हुए महाविद्यालय की सफलता का परिचय दिया।

तत्पश्चात् पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली ने अपने अध्ययन काल की मधुर स्मृतियों को तरोताजा किया। साथ ही दोनों दादा के प्रति अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित की। पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने महाविद्यालय के अविस्मरणीय सफर से सभी को परिचित कराया। यहाँ से निकले विद्यार्थियों के अभाव की कल्पना करते हुए महाविद्यालय की महिमा बताई। इसके बाद पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने वर्तमान में हो रहे अध्यात्म के अभूतपूर्व प्रचार-प्रसार की प्रशंसा की तथा उसमें महाविद्यालय के असीम योगदान को बताया।

श्री वसंतभाईजी दोषी ने महाविद्यालय की स्थापना समय के वरिष्ठ विद्वानों के योगदान को स्मरण करते हुए वर्तमान में प्रतिभावान विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या की प्रशंसा की। श्री महिपालजी ज्ञायक, बाँसवाड़ा ने अपने वक्तव्य में शास्त्री महाविद्यालयों के उत्कृष्ट संचालन में आ. दादा की रीति-नीति पर ही चलने की बात कही।

डॉ. संजीवकुमारजी गोधा ने विद्यार्थियों की निखरती हुई प्रतिभा के प्रति अपनी प्रशंसा व्यक्त की तथा सदा महाविद्यालय के प्रति समर्पित रहने की भावना भायी।

कार्यक्रम के अंत में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने अपने मंगल उद्बोधन में महाविद्यालय की स्थापना से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बताते हुए विद्यार्थियों को आवश्यक दिशा निर्देश दिये। समाज के श्रेष्ठी वर्ग से कहा कि प्रतिभाशाली विद्यार्थी ही भविष्य में उत्कृष्ट साहित्यिक कार्य करेंगे। मूलग्रंथों की टीकायें लिखेंगे। अत: प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में ही कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्होंने टोडरमल ट्रस्ट द्वारा दुगुने उत्साह से इसी कार्य को सुचारू रूप से चलाने की प्रबल भावना भी व्यक्त की।

इस प्रसंग पर शास्त्री तृतीय वर्ष के विद्यार्थी अभिषेक जैन, देवराहा द्वारा एक सुन्दर कविता प्रस्तुत की गई। कार्यक्रम का संचालन पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री तथा मंगलाचरण दिव्यांश जैन ने किया।

अपनों से अपनी बात.....

कालजयी विद्वान

पण्डित टोडरमल स्नातक परिषद के विशेष आग्रह पर रविवार, दिनांक 1 अगस्त, २०२१ को रात्रि 8:00 बजे अध्यात्मवेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा स्नातक विद्वानों के लिए जीवनोपयोगी मार्मिक उद्बोधन प्राप्त हुआ।

आयोजित सत्र में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहा कि महाविद्यालय में अध्ययनरत सभी विद्यार्थी एवं स्नातक **कालजयी विद्वान** बनें। काल से परे युगों-युगों तक उनकी भी साहित्य साधना को याद किया जाए। समाज उन्हें याद करें तो यह ना कहे कि वे भी एक विद्वान हुए थे, अपितु यह कहे कि वे भी एक विद्वान हुए हैं। यहाँ प्रयुक्त 'हैं' शब्द कालजयीता का सूचक है। उन्होंने कहा कि हमनें विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए जो सर्वस्व (बुद्धि, समय, शक्ति, जीवन) समर्पित किया है। वह उन्हें बीस दिवसीय या पंच वर्षीय विद्वान बनाने के लिए नहीं; अपितु कालजयी विद्वान बनाने के लिए किया है।

आदरणीय दादा ने अपने जीवन की घटनाओं, रीति-नीति, अपने हृदय की भावनाओं एवं जीवन के उद्देश्यों को बिना किसी औपचारिकता के स्नातक विद्वानों के साथ सांझा किया। संचालन पंडित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली ने किया।

वीरशासन जयंती विशेष कार्यक्रम सम्पन्न

१. जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर में वीशासन जयंती के उपलक्ष्य में दिनांक २५ जुलाई, २०२१ को **वीरशासन के पल्लवन में श्रमण एवं विद्वानों की भूमिका** इस विषय पर विशेष संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें वीरशासन के उद्धार में श्रमणों एवं विद्वानों के अपूर्व योगदान का १० वक्ताओं के माध्यम से स्मरण किया गया।

दो सत्रों में आयोजित गोष्ठी के **प्रथम सत्र** की अध्यक्षता डॉ. नीरजजी शास्त्री, खड़ैरी ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से आर्जव गोधा, जयपुर एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से सर्वज्ञ जैन, बर्गी ने किया। **द्वितीय सत्र** की अध्यक्षता पं. संजयजी सेठी, जयपुर ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से वृषभ वानरे, परभणी एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से पारस जैन, भिण्ड ने किया।

प्रथम सत्र में श्रेष्ठ वक्ता राशी जैन, दौसा (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं द्वितीय सत्र में सौरभ कालेगोरे, केज (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे। आभार पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री ने किया। गोष्ठी का संयोजन अपूर्व कक्षा (शास्त्री तृतीय वर्ष) द्वारा स्वानुभव जैन, संयम जैन, सुष्मित जैन, शाश्वत जैन के संयोजकत्व में किया गया।

२. कोटा (राज.) : श्री कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन मुमुक्षु आश्रम ट्रस्ट, कोटा द्वारा संचालित सिद्धम् पाठशाला के तत्त्वावधान में वीरशासन पर्व के अवसर पर दिनांक 23 जुलाई, 2021 को विद्यार्थियों द्वारा संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

सभा की अध्यक्षता डॉ. वीरसागरजी, दिल्ली ने की। साथ ही पण्डित बाबूभाईजी मेहता, पण्डित जे.पी. दोषी, पण्डित संजयजी शास्त्री जेवर, पण्डित धर्मेंद्रजी शास्त्री कोटा एवं मुमुक्षु आश्रम के सभी अध्यापकों की गौरवमयी उपस्थिति रही।

सभा का संचालन शौर्यका जैन, मुंबई एवं प्रसिद्धि जैन, दुबई ने किया। मंगलाचरण काव्या जैन, राजकोट तथा नृत्य मंगलाचरण नयांशी जैन एवं आरोही जैन, सिंगोली ने किया। संगोष्ठी के अंत में कृति जैन, सिंगोली ने आभार प्रदर्शन किया।

इसी शृंखला में दि. 24 जुलाई को विद्यार्थियों के अभिभावकों के द्वारा एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें जिनधर्म की प्रभावना में प्रसिद्ध सतियों के व्यक्तित्व को समझाया गया। जिसकी अध्यक्षता विदुषी कमलाजी भारिल्ल, जयपुर ने की।

३. दिल्ली : जैनिजम थिंकर संस्थान एवं कुन्दकुन्द कहान भक्ति पाठशाला, खंडवा के तत्त्वावधान में अ. भा. जैन युवा फैड. दिलशाद गार्डन, दिल्ली द्वारा दिनांक २४-२५ जुलाई को **दिव्यध्वनिसार विधान व बाल संगोष्ठी** का आयोजन हुआ।

प्रातःअभिषेक के पश्चात् **गुरुदेवश्री** का सी.डी.प्रवचन एवं वीरशासन के महत्त्व को अधोरेखित करता **डॉ. संजीवकुमारजी गोधा** का मार्मिक व्याख्यान हुआ।

दोपहरकालीन सत्र में वीरशासन सभा का आयोजन किया गया, जिसमें विशिष्ट विद्वानों में पण्डित जे.पी. दोषी, पण्डित नितेशजी शास्त्री, पण्डित अशोकजी राधौगढ, पण्डित जितेंद्रजी राठी एवं पण्डित जयकुमारजी जैन का समागम प्राप्त हुआ। मुख्य अतिथि श्री विजयजी बड़जात्या, इन्दौर थे। रात्रि में **ऐतिहासिक पर्व और वीरशासन जयंती** विषय पर बाल संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता पं. हेमचंदजी भोपाल ने की। विशिष्ट विद्वानों में पं. अशोकजी लुहाडिया, डॉ. प्रवीणजी शास्त्री, पं. सचिनजी शास्त्री, पं. सौरभजी शास्त्री एवं पं. संयमजी शास्त्री का समागम प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम का मंगलाचरण दिव्या जैन एवं संयोजन श्री नीरजजी जैन दिल्ली ने किया।

परमागम ऑनर्स का विशेष कार्यक्रम सम्पन्न

जयपुर (राज.) : पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा आयोजित ४४ वें आध्यात्मिक ई-शिक्षण शिविर के अन्तर्गत १४ अगस्त, २१ को परमागम ऑनर्स द्वारा विशेष सेमिनार का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की सत्र संचालिका विदुषी स्वानुभूतिजी जैन, मुंबई ने परमागम ऑनर्स का परिचय देते हुए देश-विदेश में चल रही गतिविधियों का परिचय देकर आगामी योजनाओं की जानकारी दी।

तत्पश्चात् Firesidechat के अन्तर्गत देश के **मूर्धन्य विद्वान तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, आत्मख्याति मर्मज्ञ डॉ. शांतिकुमारजी पाटील** एवं **युवाहृदय लोकप्रिय प्रवचनकार डॉ. संजीवकुमारजी गोधा** द्वारा अत्यंत ज्वलंत एवं जीवनोपयोगी प्रश्नों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आगम व अध्यात्म की दृष्टि से समाधान किया गया, जिसकी सराहना हजारों साधर्मियों ने की।

अंत में परमागम ऑनर्स के विद्यार्थियों द्वारा समयसार जैसे गंभीर विषय पर सरलता एवं क्रिएटिविटी के साथ बनाये गये विडिओ के प्रसारण पूर्वक वैश्विक स्तर पर चल रही परिक्षाओं के परिणाम घोषित किये गये।

ढाईद्वीप जिनायतन इंदौर में गेस्ट हाउस निर्माण कार्य पूर्णता की ओर..

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2021-23*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन के बढ़ते चरण...

प्रकाशन तिथि : 21 अगस्त 2021

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.

द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**